अध्यात्मवादी अभिनवगुप्त और भक्ति

प्रो. बीना अग्रवाल, अधिष्ठाता, कला संकाय, सदस्य, सिन्डीकेट, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

दर्शनशास्त्र के उद्देश्य की पूर्ति ही तब होती है जब उसका पर्यवसान अनुभूति में हो । सत्य की अनुभूति परम शिव या परम आनन्द की अनुभूति है। जीवन की महत्तम अनुभूति सत्य, शिव और सुन्दर से अनुप्राणित होती है या दूसरे शब्दों में कोई भी अनुभूति यदि वह सत्य,शिव और सुन्दर से अनुप्राणित हो, तो महत्तम बन जाती है । सत्य, शिव और सुन्दर की अभिव्यक्ति सांसारिक जीवन में विज्ञान, दर्शन, साहित्य और कला में मिलती है । केसर, कुंकुम से सुरभित प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न काश्मीर प्रदेश में साहित्य, दर्शन और भक्ति की त्रिवेणी को प्रवाहित करने वाले आचार्यों में अन्यतम है- आचार्य अभिनव गुप्त । परम तत्त्व के स्तर पर इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामरस्य को स्वीकार करने वाले आचार्य की रचनाओं में भी हमें इसी सत्य का साक्षात्कार होता है। साहित्यशास्त्र, दर्शनग्रन्थ और भक्तिपूर्ण स्तोत्रों के रचयिता अभिनव गुप्त अपने गुरु भट्टतौत के द्वारा व्याख्यायित प्रतिभा[१] के स्वामी हैं। इनके साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों में दार्शनिकता के सूत्र, दर्शन के मौलिक और टीका ग्रन्थों में साहित्यिक उपमाएं और भाव-प्रवण स्तोत्रों में दार्शनिकता व आलंकारिकता का अनुपम मिश्रण मिलता है । सर्वं शिवमयं जगत् की पारमार्थिक अनुभूति का साक्षात्कार कराने वाले, काव्य-रस और भाव से परिपूर्ण आपके कुछ प्रमुख स्तोत्र प्रो. कान्तिचन्द्र पाण्डेय की पुस्तक "Abhinav Gupta : An Historical and Philosophical Study" के परिशिष्ट में उपलब्ध हैं।

इन स्तोत्रों में अभिनव गुप्त के भावभरित हृदय की सान्द्र अनुभूति की अभिव्यक्ति तो मिलती है, किन्तु कहीं भी भक्त द्वारा अभिव्यक्त किया जाने वाला दैन्य नहीं मिलता । अभिनव गुप्त के अनुसार भक्ति से आत्मा निर्मल हो जाती है और भगवद्-रूपता के साथ तादात्म्य हो जाता है, यही मोक्ष है[२] भक्ति का

१ प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता ।

२ सर्वथा नैर्मल्यात्मा प्रसादो भगवद्रूपता तादात्म्यं मोक्ष एव। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी। पृ. २५-६।

आवेश मन को विशदतर बना देता है जिसमें भगवन्मयता तत्काल प्रवेश कर लेती है।[३] अध्यात्मवादी अभिनव गुप्त ने परमसत्य को एकात्मरूप में प्रतिपादित किया है । इसके समर्थन में वे स्वसंवित् को प्रथम, युक्ति को द्वितीय और शास्त्र को अंतिम स्थान देते हैं –

इति यज्ज्ञेयसतत्त्वं दर्शयते तच्छिवाज्ञया ।
मया स्व संवित्सत्तर्कपतिशास्त्रत्रिकक्रमात्।। तन्त्रा. १.१०६

वे अपने दार्शनिक विचारों को युक्तिपूर्वक पुष्ट भी करते हैं, इस दृष्टि से उन्हें युक्तिसंगत अध्यात्मवादी भी कहा जाता है ।

सम्पूर्ण जगत् की शिवमयता का निरन्तर अनुभव करते हुए आपके काव्यशास्त्रीय, दार्शनिक एवं (अध्यात्मवादी) स्तोत्र साहित्य सभी में इस अद्वैतभावना की एकसूत्रतापूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है –

''शासनरोधनपालनपाचनयोगात्स सर्वमुपकुरुते ।
तेन पतिः श्रेयोमय एव शिवो नाशिवं किमपि तत्र ।।'' तन्त्रा. १०९.

अभिनव गुप्त का अद्वयवाद ऐसी एक परम सत्ता का निर्देश करता है, जिसके भीतर अनेकरूपता छिपी हुई है। इस दृष्टि से इसे हम गर्भीकृतान्नतरूप अद्वैतवाद कह सकते हैं। परमेश्वर की अद्वैतता में जो अनन्तता है, वह व्यक्त अथवा मूर्त रूप नहीं है, अपितु अव्यक्त और सूक्ष्मरूप है। यह उसकी पूर्ण स्वातन्त्र्य शक्ति का उच्छलन है।[४] जिसके द्वारा 'एकोऽहम् बहु स्याम' के भाव की पूर्ति होती है । इसे शैव दार्शनिकों ने 'अहं विमर्श'की संज्ञा प्रदान की है।[५] इस प्रकार कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् स्वतंत्र प्रकाश रूप शिव अपनी अभिन्न विमर्श शक्ति से ही विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय रूप धारण करता रहता है। अभिनव गुप्त ने ईश्वर प्रत्यभिज्ञा की प्रथम कारिका[६] की व्याख्या करते हुए (विमर्शिनी में) भक्ति के प्रत्यय, भक्त की आकांक्षा, आराध्य और भक्त के सम्बन्ध को भलीभांति स्पष्ट किया है । उनके अनुसार भक्ति का प्रारम्भ नुति, स्तुति के माध्यम से देखा जाता है और यह नमस्कार भक्त का मन, वचन और कर्म से स्तुत्य

---

३ भगवद्भक्त्यावेशाद्विशदतरसंजातमनसाम्।
क्षणेनैषावस्था स्फुटमधिवसत्येव हृदयम्।। अ.गु. का अनाम स्तोत्र ७

४ किञ्चिच्चलनमेता वदनन्य स्फुरणं हि यत्।
ऊर्मिरेषा विबोधाब्धेर्न संविदनया विना ।। तन्त्रा ४.१८४
– किञ्चिच्चलनं हि नामैतदुच्यते–यद्बोधनस्त्यनन्यापेक्षं
स्फुरणं प्रकाशनं, परतोऽस्त्य न प्रकाशः अपितु स्वप्रकाश एवेत्यर्थः –विवेक
– एकः प्रकाशः स्वातंत्र्याच्चित्ररूपः प्रकाशते।
वस्तुतश्च न चित्रोऽसौ नाचित्रो भेददूषणात् ।। मालिनीविजयोत्तर तन्त्र १.७६

५ परमेश्वर : प्रकाशात्मा प्रकाशश्च विमर्शस्वभावः, विमर्शो नाम विश्वाकरेण विश्वप्रकाशेन विश्वसंहाररणं च अकृत्रिमाहमिति विस्फुरणम्–पराप्रावेशिका पृ. १–२

६ कथञ्चिदासाद्य परमेश्वरस्य दास्यं जनस्याप्युपकारमिच्छन्। ई.प्र.का.१.१.१.

के प्रति प्रह्वीभाव(द्रवीभूत होना) है । यह तब ही सम्भव है जब कि भक्त सर्वत्र नमस्करणीय के उत्कर्ष को देखे।[७] 'कथञ्चित्' पद से आशय उनके अनुसार कार्यकरण के नियमों से परे स्वेच्छा से होने वाला स्वात्म प्रकाशन है , जिसे दार्शनिक शब्दावली में 'अनुग्रह' कहा गया है । परमेश्वर किसी लोकदृष्ट नियमबद्ध कारणता के बिना ही अपनी इच्छा से जिस पर अनुग्रह करता है, वह उसके शक्तिपात का अधिकारी बनता है । शिव के शक्तिपात का सूचक-चिह्न भी उसमें एकनिष्ठ भक्ति ही है-तत्रैतत्प्रथमं चिह्नं रुद्रे भक्तिः सुनिश्चला।[८] शिव की पूर्ण स्वतंत्रता उसके कृत्यों -सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह और निग्रह से अभिव्यक्त होती है। अनुग्रह और निग्रह वह सामर्थ्य है जो ईश्वर को ऐश्वर्य प्रदान करती है-

निगृहीतानुगृहीत तत्तत्प्रमातॄंस्तत्तत्प्रमेयजातं च स्वभित्तौ दर्पणनगरवत् स एवोट्टंकयन् पञ्चकृत्यकारितां निर्भासयन्नपि न मनागतिरिच्यते । स्वच्छन्द तन्त्र ३ पृ. ९६ ।

शिव की पञ्चकृत्यकारिता और विशेषकर अनुग्रह निग्रह की सामर्थ्य को खण्डन-मण्डनपूर्वक तन्त्रालोक (१३, ८८-११५) में स्थापित किया है । चिद्रूप, स्वतन्त्र , प्रकाशात्मा शिव अपने स्वभाव से ही स्वरूप का प्रच्छादन करके अपने को अनेक अणुरूपों में प्रकाशित करता है और स्वयं को अनेक विकल्पों, आकारों और कर्मों के बंधनों में बांधता है । यह उसके स्वातन्त्र्य की ही महिमा है कि वह अणुरूप पाशबद्ध पशु अपने परिशुद्ध स्वरूप को पुनः प्राप्त (प्रत्यभिज्ञान) कर लेता है।[९]

भक्ति में बंधन और मोक्ष की अवधारणा नहीं है । भक्ति में द्वैत है जिसे अद्वैत से भी सुन्दर माना गया है- ''भक्त्यै कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्'' । किन्तु अभिनव गुप्त की भक्ति में दास्यभाव है द्वैत नहीं । शिवाद्वयवाद की दृष्टि में शिव एवं पाशबद्ध पशु दो इकाई नहीं है (शिव एव गृहीत पशुभाव)। भक्त अभिनव गुप्त ने अपने दार्शनिक वर्णनों में सरल दृष्टान्तों के द्वारा भक्ति और दर्शन को एक साथ प्रकाशित किया है । ईश्वरीय अनुग्रह होने पर ही कोई व्यक्ति परमाद्वैत की साधना में अनुरक्त हो पाता है -

''केतकी कुसुमसौरभे भृशं भृंग एक रसिको न मक्षिका ।
भैरवीय परमद्वयार्चने कोऽपि रज्यति महेशचोदितः'' ।। तन्त्रा. ४.२७६

---

७ इह परमेश्वरं प्रति या इयं कायवाङ्मनसां तदेकतानता नियोजनलक्षणा प्रह्वता सा नमस्कारस्य अर्थः । सा च तथा
कर्तुमुचिता प्रामाणिकस्य भवति, यदि सर्वतो नमस्करणीयस्य उत्कर्ष पश्येत्। १, १८-१९ ।

८ मालिनीविजयोत्तर तन्त्र २.१४ ।

९ देवः स्वतन्त्रश्चिद्रूपः प्रकाशात्मा स्वभावतः ।
रूपप्रच्छादनक्रीडायोगादणुरनेककः।।
स स्वयं कल्पिताकारविकल्पात्मककर्मभिः ।
बध्नात्यात्मानमेवेह स्वातन्त्र्यादिति वर्णितम्।।
स्वातन्त्र्यमहिमैवायं देवस्य यदसौ पुनः।
स्वं रूपं परिशुद्धं सत्स्पृशत्यप्यणुतामयः ।। तन्त्रा.,१३, १०३-५ ।।

आत्म-प्रत्यभिज्ञान के दोनों उपायों में ज्ञान और भक्ति दोनों में अंतरंगता है । भक्ति ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्त है – **'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्'** । अंतिम अवस्था में ज्ञान और भक्ति का द्वैत समाप्त हो जाता है क्योंकि आत्म साक्षात्कार का अन्तिम लक्ष्य ज्ञानपूर्ण भक्ति से भी प्राप्त होता है और भक्तिपूर्वक ज्ञान से भी । ज्ञान से प्राप्त लक्ष्य को आत्म साक्षात्कार अथवा प्रत्यभिज्ञा संज्ञा दी गयी है जबकि भक्ति का अन्तिम लक्ष्य परम तत्त्व में समावेश माना गया है।[१०] देवस्तुति, शयन, पूजा, प्रणाम सब इसी के साधन हैं। अभिनव गुप्त यही प्रतिपादित कर रहे हैं कि सम्यगावेश ही ज्ञान का मौलिक रूप है और यही प्रधान है। शास्त्रों में विहित प्रमाणादि इसी समावेश की सिद्धि के लिए है। इस प्रकार समावेश भक्ति और ज्ञान दोनों का अंतिम लक्ष्य बन जाता है । भक्तिपूर्ण समावेश स्थिति में भक्त के जीवन के सामान्य अनुभव भी परमेश्वर से अभिन्नता की अनुभूतिपूर्वक संचालित होते हैं, अर्थात् व्युत्थान दशा में भी अपनी परमेश्वरता का अनुभव उसे निरन्तर बना रहता है ।

नमस्कार, वंदन या जय के समावेश के प्रत्यय को समझने के लिए अभिनव गुप्त द्वारा व्याख्यायित अर्थों को समझना आवश्यक है। उनके अनुसार एकमात्र परमेश्वर को लक्ष्य करके मन, वाणी और काया की प्रह्वता अर्थात् समर्पण ही नमस्कार या वंदन है और यह तभी सार्थक होता है जब सर्वत्र नमस्करणीय का उत्कर्ष दिखाई दे।[११] व्यावहारिक जगत् में नमस्कार के प्रयोजन रूप में विघ्नविघात या अनिष्ट परिहार समावेश की अवधारणा के माध्यम से स्पष्ट है। विघ्न या अनिष्ट की सत्ता तब होती है जब हम सम्पूर्ण अखण्ड सत्ता का संसार में दर्शन नहीं कर पाते।[१२] नमस्कार के प्रारम्भ में ही संकुचित पशुरूपता का अपलाप करते हुए परमेश्वर के उत्कर्ष का परामर्श करना होता है । अभिनव गुप्त स्पष्ट शब्दों में कहते हैं –

भवद्भक्तस्य संजातभवद्रूपस्य मेऽधुना ।
त्वमात्मरूपं संप्रेक्ष्य तुभ्यं मह्यं नमो नमः ।। ४ महोपदेशविंशतिकम्

वे परमेश्वर से कहते हैं कि तुम तुम हो और मैं मैं हूँ ,किन्तु मैं उस स्थिति को नमस्कार करता हूँ

१० सम्यगावेशनमेव हि तत्र तत्र प्रधानम् , तत्सिद्धये तूपदेशान्तराणि । ..... समावेशपल्लवा एव च प्रसिद्ध देहादिप्रमातृभाग प्रह्वीभावनानुप्राणिताः परमेश्वरस्तुतिप्रणामपूजा ध्यानसमाधिप्रभृतय: कर्मप्रपञ्चचा। ई.प्र.वि.२ पृ.२५८।।

११ सा च तथाकर्तुमुचिता प्रामाणिकस्य भवति, यदि सर्वतो नमस्करणीयस्योत्कर्ष पश्येत्। अन्यथा युक्तिमपरामृशतः
अपरमार्थेऽपि नमस्कारोद्यतस्य सांसारिकजनमध्यपातित्वमेव। ई.प्र.वि.१ पृ.१८-१९

१२ तत्र हि सति विश्वमपि स्वात्मभूतम्अभिन्नसंवित्परमार्थं भवतीति कः कस्य कुत्र विघ्नः। ई.प्र.वि.वि.१ पृ. १८ ।।

१३ त्वं त्वमेवाहमेवाहं त्वमेवासि न चास्म्यहं ।
अहं त्वमित्युभौ न सतो यत्र तस्मै नमो नमः । महोपदेशविंशतिकम्-२

जहाँ हम दोनों का द्वैत समाप्त हो जाता है ।[१३] भक्तिपूर्ण उद्‌गार होने पर भी अभिनव गुप्त के ये स्तोत्र दार्शनिकता से परिपूर्ण हैं। वे कहते हैं कि आपके भक्तिरस की चर्वणा के पश्चात् यह सम्पूर्ण संसार एक दिखाई देता है और जब आप अपने स्वरूप का विस्तार करते हैं तब त्वम्, अहम् का भेद व यह संसार प्रकट होता है, जो तिरोधान की अवस्था में पुनः लीन हो जाता है।[१४] जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में आप ही विविध रूपों में नट की भांति आभासित होते हैं । यह सम्पूर्ण सदसदात्मक विश्वरूप आप ही हैं, इसलिए पूर्णरूप आप का आह्वान कैसे हो, सभी के आधाररूप आप को कौन सा आसन दिया जाये, निर्मलस्वरूप आप को पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान और वस्त्र कैसे समर्पित किये जाएँ?[१५] धूप, दीप, तर्पण, नैवेद्य, नीराजन आदि सब आपके प्रति प्रयुक्त नहीं हो सकते। संसार में आपकी पूजा तो यही है कि सभी अवस्थाओं में ऐक्यबुद्धिपूर्वक मन को निविष्ट करें।[१६]

शिव की निरपेक्ष भक्ति ही निष्काम साधकों के लिए शक्तिपातस्वरूपा मानी गयी है। यदि फल की कामना से भक्ति की जाती है तो उसके लिए विविध कर्मों की अपेक्षा रहती है।[१७] परमेश्वर की अनुग्रह-शक्ति के प्रति जीव का प्रयास अकिञ्चित्कर है, तथापि स्तुति, नमस्कार, वंदन, अर्चन आदि का औचित्य यह है कि जिन पर मन्द शक्तिपात हुआ है, वे भी परमेश्वर के उत्कर्ष का ध्यान करते हुए परमेश्वर से तादात्म्यरूप तीव्र शक्तिपात की ओर प्रवृत्त हो सके।[१८] इसमें कारणता शिव की स्वतन्त्र इच्छाशक्ति की ही है। इसीलिये उत्पलाचार्य हों या अभिनव गुप्त, दोनों इन ही कातर शब्दों में परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे अब स्वयं को प्रकाशित करने में विलम्ब क्यों कर रहे है? यदि विचार करना ही था तो शक्तिपात करने के समय करते –

श्रीमानुत्पलदेवश्चाप्यस्माकं परमो गुरुः।
शक्तिपातसमये विचारणं प्राप्तमीश न करोषि कर्हिचित्।।
अद्य मां प्रति किमागतं यतः प्रकाशन विधौ विलम्बसे।
कर्हिचित् प्राप्तशब्दाभ्यामनपेक्षित्वमूचिवान्।। तन्त्रा १३,२९०-९१

तथापि ज्ञान और भक्ति में कुछ अन्तर तो है ही। भक्ति एक भावना प्रधान संवेगात्मक अनुभूति

---

१४ वही, ८-९

१५ वही,१०, १९

१६ एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
ऐक्य बुद्धया तु सर्वेशे मनो देवे नियोजयेत। वही २०

१७ अनपेक्ष्य शिवे भक्ति शक्तिपातोऽफलार्थिनाम्।
या फलार्थितया भक्तिः सा कर्माद्यमपेक्षते ।। तंत्रा १३,११८

१८ पुराणेऽपि च तस्यैव प्रसादाद् भक्तिरिष्यते ।
यया यान्ति परां सिद्धि तद्भावगतमानसाः ।। तन्त्रा,१३, २५८

है तो ज्ञान तर्कप्रधान बुद्धि का निष्यन्द है। दोनों का अंतिम लक्ष्य भी परमेश्वरता-लाभ ही है । ज्ञान मार्ग के पथिक कुछ विशिष्टजन होते हैं,जबकि भक्ति मार्ग से अपने गन्तव्य को भावपूरित हृदय वाले समस्त सामान्यजन आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। अभिनव गुप्त के अनुसार **'परमेश्वरतालाभे हि समस्ता: सम्पदः तन्निष्यन्दमय्य: सम्पन्ना: एवारोहणलाभे रत्नसम्पद इव। प्रमुषितस्वात्म परमार्थस्य हि किम् अन्येन लब्धेन।**' ई.प्र.वि.१ पृ. ३३

ज्ञान और भक्ति दोनों का ही फल समावेश है और उसके पश्चात् व्युत्थान की आशंका नहीं होती, इसलिए समावेश की अवस्था ही मोक्ष है।[१९] अभिनव गुप्त के प्रगुरु उत्पलाचार्य भक्ति की अवस्था को ही मुक्ति की संज्ञा देते हैं। इनकी शिवस्तोत्रावली में इनके विशुद्ध हृदय के भावपूर्ण उद्गार मिलते हैं। अभिनव गुप्त के स्तोत्रों में भगवन्महिमा के साथ ही दर्शन भी गुंथा हुआ मिलता है जबकि उत्पलाचार्य की शिवस्तोत्रावली पढ़ कर नहीं लगता कि ये ईश्वर प्रत्यभिज्ञा कारिका और सिद्धित्रयी रचने वाले ग्रन्थकार की रचना है ।

इनके अनुसार भक्ति ही सब कुछ है जिनके पास भक्ति है उन्हें अन्य किसी याचना की आवश्यकता नहीं है और जिनके पास भक्ति नहीं है वह कुछ भी मांग ले, कोई अंतर नहीं होगा।[२०] ये सम्पूर्ण जगत् में चिन्मयता का दर्शन करते हैं । इनके अनुसार जब तक पदार्थों की असली चिन्मय स्थिति का भान न हो, तब तक परापूजा रूपी महान् उत्सव की अनुभूति नहीं हो सकती और जब तक परा पूजा रूपी महान् उत्सव की अनुभूति न हो, पदार्थों के असली रूप का साक्षात्कार नहीं हो सकता। पहुंचे हुए भक्तों में ये दोनों बातें एक साथ होती हैं।[२१]

काश्मीर के ही एक अन्य आचार्य भट्टनारायण (९वीं शती) ने अपनी स्तव-चिन्तामणि में भक्तिपूर्ण भावनामय उद्गारों के सूत्र में दार्शनिकता के मोतियों को भी पिरोया है। अपने नमस्कारात्मक पद्य में ही भट्टनारायण शिव के स्वरूप, संसार के साथ उनके सम्बन्ध आदि सम्पूर्ण दार्शनिक सिद्धांतों को एक सरल दृष्टान्त से स्पष्ट कर देते हैं-

''निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघाय शूलिने''।।[२२]

---

१९ सेयं द्वयपि जीवन्मुक्तावस्था समावेश इत्युक्ता शास्त्रे ।
.....देहपातं तु परमेश्वर एवैकरस इति कः कुत्र समाविशेत्। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनि २ पृ. २५८ ।

२० भक्तिलक्ष्मीसमृद्धानां किमन्यदपुयाचितम्।
एतया वा दरिद्राणां किमन्यदुपयाचितम्।। शिवस्तोत्रावली, २०,११

२१ यद्यथास्थितपदार्थदर्शनं युष्मदर्चनमहोत्सवश्च यः।
युग्ममेतदितरेतराश्रयं भक्तिशालिषु सदा विजृम्भते ।। शिव.स्तो.१३.७.।

२२ स्तव चिन्तामणि, ९ ।

वे ऐसे दार्शनिक, भक्त हैं जो शिव के मन्त्ररूप, मन्त्र के ध्येय, ध्याता, सभी रूपों का साक्षात्कार करते हुए उनसे मन्त्र प्राप्ति की याचना कर लेते हैं।[२३]

कश्मीरी भक्त कवयित्री लल्लद्यद (१२वीं शती) के वाक्य उनके सरल हृदय से निःसृत उद्‌गार थे। जिन्हें भक्तों ने सुना और हृदयंगम करते हुए उन्हें अध्यात्म-ज्ञान की निधि मानकर मौखिक रूप में प्रचारित किया। किसी भक्त ने इन्हें बाद में संगृहीत कर लिया। ये वाक्य अपनी प्राञ्जल काव्यशैली और सरल सजीव बिम्ब विधान के कारण लोगों के मानस पटल पर आज भी प्रतिबिंबित हैं। लल्लद्यद ने भौतिक जीवन में तितिक्षा, दैन्य, कष्टसहिष्णुता, आत्मसंघर्ष और नैराश्य से उत्पन्न क्षोभ व मोहभंग की अनिवार्यता को स्वीकारा। उनके अनुसार जो व्यक्ति दैन्य और प्रीति के निमित्त काम, क्रोध, लोभ रूपी बटमारों (वतनोश) का वध कर लेता है, वही सच्चे अर्थों में प्रभु का (लोगुन दास) है ।

इस प्रकार लगभग सभी शिवाद्वयवादी दार्शनिकों, भक्तों के अनुसार भैरवीय चिदात्मतत्त्व से संगति या समावेश ही पराभक्ति है । यही साध्य है, यह परशक्तिपात स्वरूप है । यह परमेश्वर की अनुग्रह शक्ति अथवा अविच्छिन्न पारमैश्वर्य से एकाकारता की अवस्था है, जिसमें पूजा, पूजक, पूज्य में भेद का लोप हो जाता है।[२४] भक्त और भगवान् का द्वैत समाप्त हो जाता है। यह संवित् के परिपूर्ण स्वरूप का दिग्दर्शन अथवा अपने माहेश्वर रूप का प्रत्यभिज्ञान है । इस प्रत्यभिज्ञान का मार्ग ज्ञान और भक्ति का अद्वैत ही है।

---

२३ मन्त्रोऽसि मन्त्रणीयोऽसि मन्त्री त्वत्तः कुतोऽपरः ।
स मह्यं देहि तं त्वन्मन्त्रः स्यां यथा प्रभो ।। स्त.चि.८४

२४ पूजापूजकपूज्यभेदसरणि केयं कथा अनुत्तरे।